तलाश: सुख की

डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया

प्रथम संस्करण : ३५००
२९ अप्रेल २००५

लेखिका :
डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया
बी.ए. ऑनर्स (स्वर्णपदक प्राप्त)
एम. ए., पी. एच. डी.
मुंबई (महाराष्ट्र)

प्रकाशक :
आराध्य प्रकाशन
दिव्यध्वनि प्रचार-प्रसार ट्रस्ट,
ए - १७०४, गुरुकुल टावर्स,
जे. एस रोड़, दहीसर (पश्चिम).
मुंबई - ४०० ०६८.

दातार :
१०१/ - सुशीलाबेन जयन्तीभाई वखारिया,
बोरीवली, मुम्बई।

शुभकामना
दिव्य ध्वनि का संदेश पाकर,
वीर गुण जीवन में अपनाकर;
'शुद्धात्मा' को ध्येय बनाकर,
मानव जीवन को आज पाकर;
कर लो जन्म सफल तुम्हारा,
जन्मदिन है आज तुम्हारा।

मुद्रक :
राजु मोदी
मो. : ९८२०८५०२९१

मूल्य : १०/-

क्या/कहाँ

तलाश: सुख की ३
क्या खोया? क्या पाया? ६
विदाई का वेला ११
विवेकी १४
दु:खी कौन? १७
❋ ◆ क्या है सुख? २०
❋ ◆ कहाँ है सुख? २२
❋ ◆ इच्छा २५
❋ ◆ ये भी इच्छा हैं ! २९
❋ ◆ सुख कैसे प्राप्त हो?..... ३२

मुद्रक : सरस्वती प्रिंटर्स - ०९८२०८ ५०२९१

तलाश: सुख की

: लेखिका :
डॉ श्रीमती शुद्धात्मप्रभा टड़ैया
बी.ए.ऑनर्स (स्वर्ण पदक प्राप्त)
एम.ए.,पी.एच.डी.
फोन : (022)55750723,
मुंबई,(महाराष्ट्र)

: प्रकाशक :
आराध्य प्रकाशन
दिव्यध्वनि प्रचार-प्रसार ट्रस्ट
ए - 1704, गुरुकुल टावर्स,
जे.एस रोड़, दहीसर (पश्चिम).
मोबाईल : 9324097525
मुंबई - 400 068

प्रकाशकीय

संसार के समस्त प्राणी दु:खी हैं, अत: ' सुख की खोज ' में ही वे अपना पूरा जीवन व्यतीत करते रहते हैं, किन्तु उन्हें कही भी अंशमात्र भी सुख नहीं मिलता । हाँ! क्षणिक खुशी अवश्य मिलती है, जिसमें ही उन्हें सुखाभास होता है । संसार में खुश तो बहुत से प्राणी हो लेते हैं, पर वे सुखी हों यह आवश्यक तो नहीं । यह सुख क्या है? कहाँ है? क्या इसे प्राप्त किया जा सकता है? यदि हाँ,तो कैसे? ..... आदि विषयों का वर्णन डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया ने प्रस्तुत कृति में किया है ।

यह कृति डायरी शैली में लिखी गई है । इसमें 74 वर्षीय वृद्धा भक्ति दैनिक जीवन में होनेवाली घटनाओं को डायरी में लिखती जाती है, साथ-ही-साथ पूर्व स्मृतियों के माध्यम से बचपन से लेकर बुढ़ापे तक अलग- अलग अवस्था में एक ही विषय के प्रति कैसे विचारों में परिवर्तन आता हैं? प्रत्येक अवस्था की क्या परेशानियाँ हैं? हमारे जीवन का क्या उद्देश्य होना चाहिए? उसे कैसे प्राप्त करें? वृद्धावस्था में होने वाले शारीरिक व मानसिक कष्टों में क्या करें? वृद्धावस्था की जिम्मेदारी से निवृत होकर अपने अंतिम सफर की तैयारी कैसे करें? आत्मिक सुख को कैसे प्राप्त करें? आदि का वर्णन तो है ही, साथ-ही-साथ इसमें सामाजिक व धार्मिक कुरीतियों का चित्रण करते हुए उनका समाधान भी प्रस्तुत किया गया है ।

आज तकनीकों एवं विज्ञान ने हमारे समय को काफी लंबा कर दिया है । जो दूरियाँ पहले महिनो में तय होती थी, अब वह घंटो में पूरी हो जाती है । जिन कार्यों में पहले घंटों लगते थे अब वह कुछ मिनिट में हो जाते हैं । जो रसोई व घर के काम-काज पूरा दिन ले लेते थे, आज वह मात्र कुछ घंटों में सिमट गए हैं । रुटीन काम-काज तो हर प्राणी करता है । विशेष के लिए अब समय है क्योंकि आधुनिक साधनों ने हमारी बहनों को अब काफी समय उपलब्ध कराया है। अब वे भी अपने जीवन को नया आयाम दे सकती हैं । बस वे लक्ष्य निर्धारित करें । जीवन का अर्थ और उपलब्धियाँ उन्हें हासिल हो जावेगी । बस वे अपनी रुचियों को जानें, अपने को पहिचाने और अपने समय को उन रुचियों के विकास में लगा दें ताकि उसका फायदा जन जन तक पहुँचे। वे मुन्नी की मम्मी या पप्पू की ताई से अलग अपनी पहिचान बनाकर जीवन का सच्चा आनंद प्राप्त करने के मार्ग पर बढ़ सकती हैं । प्रस्तुत कृति में लेखिका ने यही बताने का प्रयास किया है ।

प्रकाशन मंत्री
श्री अविनाशकुमार टड़ैया
- (022)55950723 मोबाईल : + 91-9821266980
मुंबई - 400 068

तलाश : सुख की 30 Dec 1973

सुख! सुख!! सुख!!! क्या इस संसार में सुख कभी प्राप्त होता भी है? क्या संसार में सुख की खोज करना वैसा ही प्रयास नहीं है जैसे कि रेगिस्तान में पानी की तलाश! बात सिर्फ मानवों की ही नहीं है, अपितु इस संसार के समस्त प्राणी इस सुख की तलाश में अपना सारा जीवन लगा देते हैं, पर क्या उन्हें सुख का एक पल भी मिलता है? दूसरों की बात जाने दो मैं तो अपनी ही बात करती हूँ । बचपन में पंडितजी के दु:ख विषय में दिए गये प्रवचन ने मुझे झकझोर दिया था । दिन रात वही मेरे दिमाग में घूमता रहता, स्वप्न में भी वही बातें परेशान करती रहतीं । दादाजी से जब प्रश्न करती, तो वे टाल देते । पंडितजी भी बाहर चले गए । अत: जिज्ञासु बनकर मैं अपनी बुद्धि अनुसार स्वयं ही जीवन भर सुख की तलाश करती रही । दादी, मम्मी के कहे अनुसार चलती रही । पर कहीं नहीं मिला सुख!

जब मैं बच्ची थी, तब मुझे खेलने में सुख लगता था, पर दादी तभी से कहती थी - 'भक्ति! खेलने में क्या रखा है, यदि जीवन में सुखी होना है तो घर के काम करना सीख, अच्छा खाना बनाना सीख!' दादी मेरे लिए भगवान से भी बढ़कर थीं । अत: उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर मैंने कुछ महिनों में अच्छा खाना बनाना सीख लिया । तब मैंने दादी माँ से कहा- दादी माँ! दादी माँ!! मैंने खाना बनाना तो सीख लिया, पर अब तो मैं और अधिक दु:खी हो गई । पहिले मुझे थोड़ा बहुत खेलने को मिलता था, पर अब तो माँ पूरा दिन रसोई में ही रखने लगी हैं । अब आप ही बताओ मैं कब व कैसे सुखी होऊँगी? तब दादी बड़े प्यार से बोलीं - 'बेटा, तूँ तो पराया धन है । जब तेरी शादी होगी, तब तूँ अपने घर जाएगी, तो सुखी हो जाएगी ।'

लगभग 12 वर्ष की उम्र में मेरी शादी भी हो गई । अब मेरी प्रसन्नता का अंत न था; क्यों कि दादी के कहे अनुसार अब मेरे सुखी होने के दिन आ गए थे । (इसके अतिरिक्त उस समय मैं शादी के बारे में कुछ समझती नहीं थी ।)

शादी के दो साल पूरे होने पर भी, मेरी सुख की तलाश जारी थी क्योंकि अब तो पीहर वाली स्वतंत्रता भी नहीं थी । अनेकों बंधन और जिम्मेदारियों के बीच में खुश भी नहीं रह पाती थी, सुखी होने की तो बात ही अलग है । इसी बीच दादीजी स्वर्ग सिधार

गई । अत: मैने माँ से ही कहा, माँ, दादी तो कहती थीं कि -'जब तेरी शादी हो जाएगी, तो तूँ सुखी हो जाएगी;' पर मुझे तो अभी तक सुख मिला ही नहीं । तब माँ ने तपाक से कहा- 'अभी तो तूँ अधूरी हैं जब तूँ माँ बनेगी तो पूर्णता को प्राप्त हो जाएगी। मातृत्व का सुख अनुपम सुख है ।'

16 की होते- होते मैं माँ भी बन गई । माँ बनने के साथ ही मुझे दु:खों की, दर्दों की पहचान हो गई और मैं सोचने लगी — क्या सुख का आरंभ दु:ख से हो सकता है? नहीं, ऐसा संभव नहीं । किन्तु माँ ने तो मातृत्व को सुखों की खान कहा था, पर मुझे तो ये दु:खों की खान ही नजर आ रहा है । जब मैंने माँ से ये बात कही तो माँ बोली- 'बेटा, बच्चे तो बड़े होकर ही सुख देते हैं, उन्हे बड़ा तो होने दे । अभी थोड़ा कष्ट उठा लोगी तो बुढ़ापे में सुखी रहोगी । आखिर अंत में वे ही काम आएँगे, उनसे ही वंश बढ़ेगा, हमारा नाम रहेगा ।'

वंश बढ़ाने व नाम चलाने के चक्कर में मैं छह बच्चों की माँ बन गई। वंश बढ़ाने वाला जब मेरी कोख में आया तब तक मैं 35-36 की हो चुकी थी । बच्चे संभालने व घर - गृहस्थी चलाने में समय कब बीत गया, पता ही न चला । सुख के बारे में सोचने की तो दूर की बात है, अपने खाने पीने की भी सुध नही रहती थी । धीरे-धीरे माँ के पास जाना भी कम हो गया था क्योंकि पति व बच्चे ही अब मेरा जीवन बन गए थे । धीरे-धीरे बच्चे बड़े हो गए उनकी शादी भी हो गई । समय का पता ही न चला ।

जब तक सबसे छोटी बेटी का कन्यादान हुआ तब तक मैं 52-53 वर्ष की हो चुकी थी । जीवनभर भरे- पूरे घर में रहने वाली मुझे अब घर सूना-सूना लगने लगा था । अत: 21 वर्ष की उम्र में ही मैंने बेटे का ब्याह भी कर दिया । 62 की होते- होते मैं दो पोते पोतियों की दादी भी बन गई। धीरे- धीरे घर बहू ने संभाल लिया था । पोते-पोती स्कूल जाने लगे, घर का काम नौकर चाकर करने लगे ।

इस प्रकार 7 से 70 तक रसोईं में ही अपना सारा समय व्यतीत करने वाली मुझे अब कुछ काम न रह गया था । खाली बैठे- बैठे मेरा मन नहीं लगता था, घर काटने को दौड़ता था । अत: अपने उपयोग को स्थिर करने के लिए बहुत सोचविचार -पूर्वक मैंने अपने ही पोते-पोतियों के साथ पढ़ना-लिखना आरंभ किया । मेरे इस उपक्रम का परिचितों ने बहुत मजाक उड़ाया । कुछ तो कहने लगे कि -'बुढ़िया के पैर तो कब्र में

लटके हैं । अब इस उम्र में लिखना सीखकर क्या करेगी? जब तक ढ़ंग का लिखने लायक होगी, तब तक तो स्वर्ग ही सिधार जाएगी ।'- इन सब बातों को सुनी - अनसुनी करते हुए मैने हार नहीं मानी । उनके कहने से मैं अपने उद्देश्य से विचलित भी नहीं हुई । मैंने सोचा- लिखना सीखने में हानि ही क्या है? यदि मैं लिखना पढ़ना सीख गई-ब उम्र शेष रही तो मुझे धर्म लाभ के लिए मात्र पंडितजी के प्रवचनों के भरोसे नहीं रहना पड़ेगा, मैं स्वयं घर पर दिन रात शास्त्रों का अध्ययन-मनन कर सकती हूँ और मैं सुख की तलाश भी कर सकती हूँ । कम से कम वस्तु का यथार्थ स्वरूप तो समझ सकती हूँ ? कि क्या है सुख? कहाँ है सुख? और एक बार फिर मैं 70 की उम्र में सुख की तलाश में निकल पड़ी ।

कल मेरा 75 वाँ जन्मदिन है । जीवन के इस 74 वर्षों में मैंने **क्या खोया? क्या पाया ?** इसकी चर्चा कल करूँगी ।

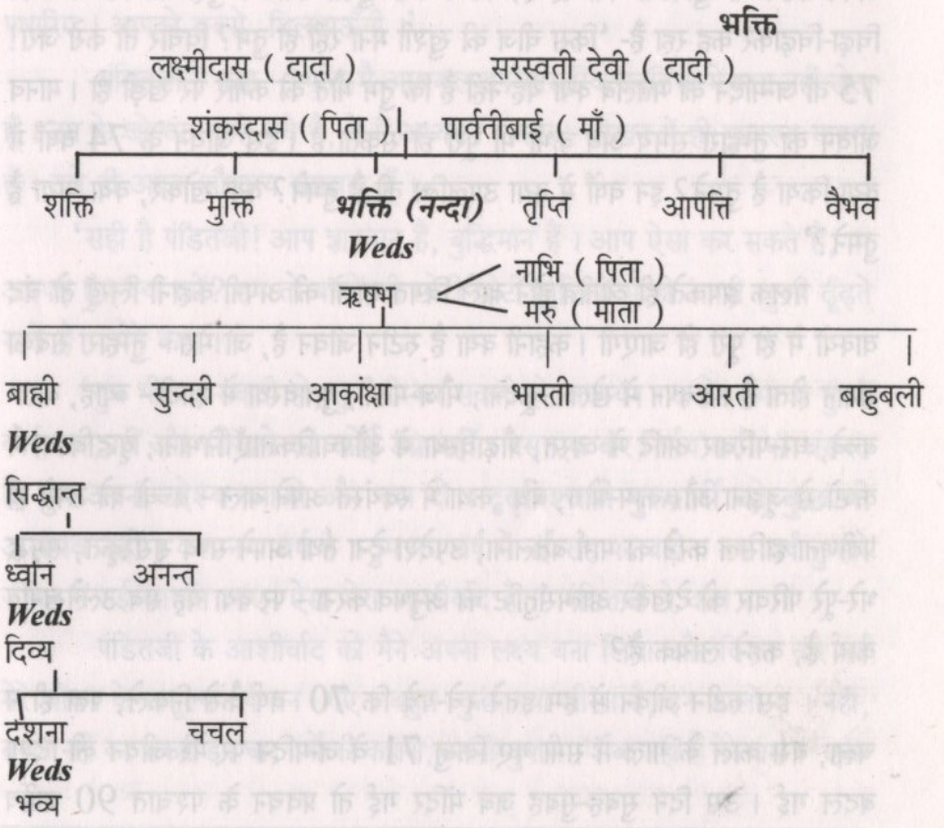

क्या खोया? क्या पाया? 31 DEC 1973

खोना और पाना - एक सिक्के के दो पहलू हैं । जब हम कुछ प्राप्त करते हैं, तो बहुत कुछ खोते भी है; और कुछ हम खोएँ या ना खोएँ पर अमूल्य समय हम अवश्य खोते हैं, हमेशा खोते रहते हैं; बर्बाद करते रहते हैं । वे जन भाग्यशाली होते हैं, जो कुछ खोकर बहुत कुछ पा जाते हैं । वह उपलब्धि इतनी सशक्त और प्रभावपूर्ण होती है कि समय व्यतीत होकर भी ठहर जाता है, परिवर्तन अपरिवर्तन बन जाता है । अपरिवर्तनीय पर्यायें अर्थात् ज्यों की त्यों उत्पन्न होने वाली पर्यायें । ज्यों की त्यों उत्पन्न होने वाली पर्यायों में हम भेद नहीं कर पाते, उनका बदलना हमें महसूस नहीं होता, पता नहीं चलता । राग-द्वेष से रहित ऐसे महापुरुषों का जन्मदिन हम मनाते रहे हैं, मनाते हैं, जो कि उचित है; किन्तु आज ये बच्चे मेरी प्लेटिनम जुबली मना रहे हैं, आज के नए रंग-ढ़ंग से, उनके अपने तरीके से खुशियाँ मना रहे हैं; पर मैं कैसे खुशी मनाऊँ? मुझे तो मेरा जन्मदिन चिढ़ा-चिढ़ाकर कह रहा है- 'किस चीज की खुशी मना रही हो तुम? विचार तो करो जरा! 75 वाँ जन्मदिन का मतलब क्या यह नहीं है कि तुम मौत की कगार पर खड़ी हो । मानव जीवन का तुम्हारा समय अब कभी भी पूरा हो सकता है । इस जीवन के 74 वर्षों में क्या किया है तुमने? इन वर्षों में क्या उपलब्धि की है तुमने? क्या खोकर, क्या पाया है तुमने?'

पलक झपकते ही व्यतीत होने वाले विगत सालों की अपनी कहानी लिखूँ तो चंद वाक्यों में ही पूरी हो जाएगी । कहानी क्या है रुटीन जीवन है, जो मेरा - तुम्हारा सबका समान होता है । बचपन में खेलना-कूदना; मौज-मस्ती; युवावस्था में शादी - ब्याह, बाल-बच्चे, घर-परिवार आदि में व्यस्त, प्रौढ़ावस्था में औपचारिकताएँ निभाना; वृद्धावस्था में कष्टों से जूझना और काम-भोग, बंध कथा में स्वयंरत अपने बाल - बच्चों को उनमें ही प्रवीणता हासिल करने का मार्ग बतलाना, उपदेश देना तथा अपने सभ्य सुसंस्कृत, समृद्ध भरे-पूरे परिवार को देखकर आत्मसंतुष्टि का अनुभव करना - पर क्या यह सब उल्लेखनीय कार्य हैं, कहने लायक हैं?

इस रुटीन जीवन में हम इतने रचे-पचे कि 70 वर्ष कैसे निकले, पता ही न चला, बस काल के गाल में समा गए किन्तु 71 वें जन्मदिन पर मेरे जीवन की दिशा बदल गई । उस दिन सुबह-सुबह जब मंदिर गई तो प्रवचन के पश्चात 90 वर्षीय

पंडितजी ने पूँछा - 'भक्ति! तुम्हारी बचपन की शंकाओं का समाधान हुआ या नहीं? उस समय तुम बहुत प्रश्न किया करती थी ।'

'कहाँ पंडितजी? हमने पहले बहुत कोशिश की पर सही जवाब मिला नहीं, बाद में घर-गृहस्थी में ऐसे रमे कि उन सब बातों के लिए फुर्सत ही नहीं मिली, पर पूजा-पाठ हम नियमित करते रहे हैं ।' मैंने कहा ।

'अब क्या करती हो दिन भर? अब तो समस्त जिम्मेदारी से मुक्त हो गई होगी ।' पंडितजी ने पुन: पूँछा ।

मैंने कहा-'हाँ जी, पंडितजी । समस्त जिम्मेदारी से निवृत्त अब मैं दिन भर अपनी चौथी पीढ़ी की शादी देखने के सपने देखती रहती हूँ । उसकी शादी में अपने सारे साके-सोहरे (तमन्ना) पूरी करना चाहती हूँ । चौथी पीढ़ी की शादी देखना बड़े भाग्यशाली को ही नसीब होता है । आज मेरा जन्मदिन है । सब बाल-बच्चे आए हुए हैं । आप भी पधारिए । आपको सबसे मिलवाऊँगी ।'

पंडितजी ने कहा - 'भक्ति मैं आजकल इन सांसारिक प्रवृत्तियों में भाग नहीं लेता हूँ । उम्र के जो चंद लम्हे बचे हैं, वे मैं अध्ययन - मनन - लेखन में ही गुजारना चाहता हूँ । उसे ही अपना सौभाग्य समझता हूँ ।

'सही है पंडितजी! आप ज्ञानवान हैं, बुद्धिमान हैं । आप ऐसा कर सकते हैं, पर अनपढ़ हम क्या करें? हम तो बच्चों की छोटी-छोटी खुशियों में ही अपनी खुशी ढूँढ़ते रहते हैं'- मैंने कहा ।

'तुम भी पढ़ सकती हो, तुम भी कर सकती हो अध्ययन । क्षयोपशम की तुममें कोई कमी नहीं और **सीखने की कोई उम्र नहीं ।** बस एक बार निर्णय करने की जरूरत है, तुम अपना उद्देश्य बनाओ और चल दो । **दृढ़निश्चयी पुरुषार्थी को कुछ भी असंभव नहीं ।** कल नया वर्ष है । तुम नए वर्ष में नई राह पर बढ़ो । नया वर्ष तुम्हारे जीवन में नई जागृति लाए- ऐसा मेरा आशीर्वाद है ।' पंडितजी ने कहा ।

पंडितजी के आशीर्वाद को मैंने अपना लक्ष्य बना लिया और विगत चार वर्ष मेरे जीवन के अमूल्य वर्ष बन गए । बहुत- कुछ नया सीखा है, इन सालों में । नहीं, बयान नहीं कर सकती इन चार वर्षों की कहानी, अपनी जुबानी । शब्द नहीं हैं मेरे पास । एक-

एक पल जिया है मैंने, मेरे भावी जीवन की नींव बने हैं यह वर्ष ।

सच, विगत चार वर्ष अनुभूति वर्ष ही रहे हैं । ओफ्फ! गजब की अनुभूतियाँ हुई हैं । सब कुछ एक साथ लिखने का मन कर रहा है; किन्तु **यह वस्तुस्वरूप है कि हम जान तो एक साथ सकते हैं; पर कहने में, लिखने में क्रम होता ही है ।** मैं अपनी कहानी कहाँ से प्रारंभ करूँ? चलिए आज से ही प्रारंभ करते हैं –

जी हाँ आज मेरा 75 वाँ जन्मदिन है । मुझे अपने बीते 74 वर्षों की कुछ ही बातें स्मरण हैं, शायद वे ही बातें जो मेरे जीवन में परिवर्तनलाने में, एक मोड़ लेने में निमित्त बनी थीं, शेष बातें भूल गई हूँ, भुला दी गई हैं । नहीं, नहीं – यह कहना ठीक नहीं क्यों कि वे याद ही नहीं की गईं; याद क्या नहीं की गईं, उन पर ध्यान ही नहीं दिया । **ध्यान नहीं देना विस्मरण का सर्वोत्तम उपाय है और पुनरावृत्ति स्मरण के लिए आवश्यक है ।**

एक बात मुझे अच्छी तरह याद है, याद क्या है रोम-रोम में समाई हैं क्योंकि उसका अहसास हमें बचपन से लेकर आज तक हमारे बुजुर्गों द्वारा निरंतर कराया जाता रहा है । वे कहते थे कि स्त्री अबला होती है, बचपन में वह पिता के आश्रित, युवावस्था में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के आश्रित रहती है । यही बात कवि के शब्दों में कहूँ तो –

'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी ।
आंचल में है दूध, आँखों में है पानी ।।'

यह सुन-सुनकर बस जीवनभर अबला ही बने रहे हम, घर से बाहर कदम रखने से भी कतराते रहे हम; पर इन चार सालों में मुझे अपने सबलपन का ज्ञान हुआ, अपनी शक्ति की पहचान हुई । जब हम जीव हैं, हमारे में ज्ञान जैसी अनंत शक्तियाँ हैं तो फिर हम दीन - हीन क्यों बने हैं ? आखिर क्यों ?? अपनी शक्ति के पहचान के अभाव में ही न ।

हमारी अनंत शक्तियों की बात तो जाने दीजिए । मात्र ज्ञान शक्ति की ही बात करें तो ज्ञान बल के सामने बाहुबल कुछ काम नहीं करता । महाभारत में पाण्डव ज्ञानबल से ही जीते थे, चंद्रगुप्त सम्राट ज्ञानबल (चाणक्यनीति) से बना था और परमसुखी भी ज्ञानबल से ही होते हैं । ऐसी ज्ञानशक्ति के धनी हम अबला कैसे?

ज्ञान की शक्ति अनंत है । जीव की जीवंतता ज्ञान है । सारे विश्व में ज्ञान का

ही बोलबाला है । बस हमें अपनी ही शक्ति की पहचान नहीं थीं और हम अबला बने रहे, जीवन को बोझ की तरह ढ़ोते रहे; पर अध्ययन के बल पर जब आज अपने स्वरूप - शक्ति की पहचान हुई तो लगने लगा है कि - काश! जीवन में 2 - 4 वर्ष और मिलें, तो मैं भी ज्ञान के अथाह खजाने में से कुछ रत्न बटोर लूँ । मूल जीवन चला गया, व्याज बचा है । व्याज के भरोसे कितने दिन रहा जा सकता है । नहीं, नहीं, अब वक्त नहीं है मेरे पास । अब तो बस पूर्ण स्वार्थी (स्व-अर्थी) बनना है, अपने में ही जमना-रमना है । आज तक दूसरों की जिंदगी को बहुत जांना -पहचाना; अब बस अपने को जानना चाहती हूँ मैं, अपने को ही पहचानना है मुझे! कैसा विचित्र जीवन जिया है मैंने? सबको जानते रहे, अपने को ही नहीं जाना । सबको पहचानते रहे, पर अपने को ही न पहचाना । सबके सुख का ध्यान रखते रहे, अपने सुख को ही न जाना । क्या है सुख? कहाँ है सुख? क्या हमने जीवनभर जो किया उससे कोई सुखी हुआ? वही हालत हुई न हमारी कि – बकरी अपने जी से गई राजा जी को अलोनी (बेस्वाद) हुई ।

कितनी गल्ती गिनाएँ । जब पहला ही घड़ा उल्टा रखा गया तो शेष घड़े तो उल्टे ही रखे जाने थे । पूरा जीवन ही तो गल्तियों में निकला है । बस! बस!! अब बहुत हो गया । जो बीत गया, वो गया । अब उनकी स्मृति कर कर के मुझे वर्तमान खराब नहीं करना है ।

स्मृतियाँ! वाह क्या कहना इन स्मृतियों के? बड़ी अजीब हैं ये? ये चाहे अच्छी हों या बुरी- हमेशा दुखदायी? भूत की वर्तमान में उपस्थिति ही तो स्मृति हैं । नहीं चाहिए मुझ इन भूतों का साथ । जब देखो तब बिना बुलाए मेहमान की तरह आ जाती हैं; चिपक जाती हैं, पीछा नहीं छोड़ती हैं ।

स्मृति का भूत मेरा भी पीछा नहीं छोड़ रहा है इस भूत को मुझे कीलना ही होगा, कैद करना ही होगा । लेखनी की सहायता से मैं इन्हें

डायरी में कैद कर रही हूँ । मेरे द्वारा कैद इन कैदियों से यदि आप कुछ लाभ उठा सके तो मेरा इन्हें कैद करना सार्थक होगा, क्योंकि मनुष्य की विशेषता यह है कि - वह दूसरों के, बुजुर्गों के अनुभव से सीख लेता है, पशु तो खुद ठोकर खाकर सीखते हैं । अनुभव का लाभ वे उठा नहीं सकते क्योंकि उनमें भाषा व लेखन की सामर्थ्य नहीं

है । लेखन वह कला है जिसके द्वारा हम आगामी पीढ़ी तक अपने विचार प्रेषित कर सकते हैं और अपनी पूर्व पीढ़ी के विचारों को जान सकते हैं और उनके अनुभव का लाभ ले सकते हैं । वे जिस रास्ते पर चलकर सुखी हुए, हम उसे जानकर उस पर चल सकते हैं । हम जिस रास्ते पर चलकर दु:खी हुए, हमारे बच्चे उससे शिक्षा लेकर, उस मार्ग पर चलने से बच सकते हैं । विगत चार सालों के अथक परिश्रम से अब मैं इस लायक हो गई हूँ कि अपने अनुभव बाँट सकूँ, और बुर्जुगो के अनुभव का लाभ ले सकूँ ।

कल मेरी परदुहिती देशना की शादी है । चौथी पीढ़ी की शादी देखना कभी मेरा जीवन का ध्येय हुआ करता था । बस इसीलिए अपनी लंबी उम्र की दुआ किया करती थी, पर आज इस सबमें मेरी रुचि नहीं रही, ऐसा लगता है कि इन सब सांसारिक कार्यो में मेरा अमूल्य मनुष्य भव यूँ ही चला गया ।

चलिए आज समय बहुत हो गया है । कल मिलेंगे ।

भक्ति

विदाई की वेला 1 JAN 1974

आज देशना की विदाई हो गई । हाथ हिलाते, बाय-बाय करते मेरी पर दुहिती देशना को जाते देखकर मेरी हमउम्र उम्रदराज महिलाओं के बीच काना- फूसी शुरु हो गई 'देखो, कैसी बेशर्म लड़की है । कुर्सी पर बैठे-बैठे मजे से दूल्हे से बातें कर रही थी, और अब विदाई की इस वेला में भी इसे दु:ख नहीं हो रहा । रोना नहीं आ रहा ।' तभी दूसरी तपाक से बोली 'जब माँ-बाप ही हाथ हिला रहे हैं, तो बेटी का क्या दोष है? तभी तीसरी बोली 'हम तो दादी-नानी बन गए, पर आज तक पीहर से विदा होने पर घंटो रोते रहते हैं ।' चौथी बाली 'हमारा जमाना तो दूसरा था.....।' मेरा मन इन्हीं वाक्यों में उलझकर रह गया । जो बातें वे कर रही थी, उनमें सच्चाई तो थी। यह बदलाव तो आया है । आखिर यह अंतर क्यों ? क्यों ??.....यह सवाल मुझे काफी देर तक मथता ही रहा । क्या यह मात्र पीढ़ी का अंतर है? नहीं, यह नहीं हो सकता । माँ-बेटी का राग तो कोई भी पीढ़ी हो बोलता ही है । मेरी तो पाँच-पाँच बेटियाँ थीं, विदा पहली की रही हो या पाँचवी की, पर महिनों आँसू थमते ही न थे । देशना तो ध्वनि की इकलौती बेटी है । उसे तो देशना से तीव्र लगाव है । मुझे याद है वह दिन जब देशना 15 की उम्र में मेरे पास से पहली बार होस्टल गई थी, तब भी ध्वनि के आँसू थमते ही नहीं थे । तब मैंने ही उसे समझाया था कि कम-से-कम विदा तो हँसकर करो। तुम्हारे आँसु देखकर देशना की क्या दशा होगी? जरा विचार तो करो । अब जब उसने हँसकर विदा दे दी, तो हम ही उस पर प्रश्नचिह्न खड़ा करने लगे। अपने दु:ख के आवेग को मुस्कानों का पहरावा पहनाना कितना कष्टदायी रहा होगा उसके लिए? पर अपनी बेटी को खुश व प्रसन्न देखने के लिए माँ क्या नहीं करती? जब ध्वनि वैसा कर रही है, तो हम बुजुर्गो को एतराज क्यों? शादी की विदा रोकर ही की जाए - ऐसा क्यों?आखिर क्यों?? जब अन्य कार्य की वजह से बेटा या बेटी को बाहर भेजा जाता है, तो रोकर विदाई अपशकुन मानी जाती है, तो फिर शादी की विदाई में रोना शुभ कैसे? व क्यों?? आखिर क्यों???

जब मैंने इस पर गंभीरता से विचार किया तो पाया कि जब कभी भी हम हर्ष या विषाद - किसी भी आवेग के तीव्रतम रूप में होते हैं, तो हमारी आँखों से स्वत: ही पानी निकल आता है, जिन्हें आँसू संज्ञा दी जाती है । किसी भी रस का

परिपाक होने पर, भावविह्वल होने पर आँसु सहज ही आते हैं। पहिले के जमाने में शादी के मौके पर विभिन्न प्रकार के गीतों द्वारा जुदाई की भावनाओं को उपस्थित नर - नारियों में उभारा जाता था, अत: सहज ही उपस्थित जन- समुदाय के आसुँ आ जाते थे। आज शादी में प्राय: प्रफुल्लता का वातावरण पेश किया जाता है। गाने भी मस्ती भरे होते हैं, अत: विदाई का, जुदाई का वातावरण ही नहीं बनता है। इसलिए यद्यपि विदाई के समय तो उनके आँसु नहीं आते हैं, किन्तु अब मैं दावे से कह सकती हूँ कि जब भी माँ - बेटी को इस जुदाई का अहसास होगा, तो घंटों उनके आँसु नहीं थमेंगे।

बेटी की विदाई की कल्पना भर से जिसकी आँखे भर आती थी ऐसी ध्वनि तथा माँ की जुदाई की कल्पना से ही आहत होकर शादी से ही इंकार करने वाली देशना - दोनों का ही सार्वजनिक तौर पर किया गया यह प्रसन्नता का प्रदर्शन मेरे लिए अवश्य ही हर्ष का विषय है क्योंकि मेरे ही द्वारा समय-समय - पर दी गई हिदायतों को कोई ऐसे पालन करेगा, मुझे कल्पना नहीं थी। मैं अक्सर पुत्र-पुत्रियों, नातियों को कहा करती थी कि -अपने **दु:खों को, दर्दों को अपने तक ही सीमित रखना चाहिए, उन्हें सार्वजनिक नहीं बनाना चाहिए** क्योंकि कोई भी उन्हें दूर करने में सहयोग तो करता नहीं, अपितु मजाक ही बनाता है। अत: अपनी प्रसन्नता तो सब में बाँटों, किन्तु अपने दु:ख अपने तक ही सीमित रखो।' पर रसोई तक ही सीमित रहने वाली, बिना पढ़ी - लिखी ये महिलाएँ करें भी तो क्या करें? जीवनभर दूसरों की बुराई करने में लगी बुद्धि को वे विवेकी बनाएँ तो कैसे? नहीं, नहीं; मैं बुद्धि का ऐसा दुरुपयोग नहीं देख सकती। ये मानव जीवन मिला है, बुद्धि मिली है- इसका उनके जीवन में सदुपयोग भी होना चाहिए। पर कैसे? अपनी गल्ती तो ये स्वीकारने वाली हैं नहीं, कुछ सीखने को भी तैयार होंगी नहीं, कहेंगी - 'जिंदगी भर सीखा है, अब हम कुछ सीख नहीं सकते। बहुत बदला है अपने को, अब बदल नहीं सकते। जब बच्चे थे तब माँ-बाप से सीखा, बहु बने तो सास से सीखा; अब बुढ़ापे में भी बहु-पोते से सीखें क्या? अब तो हमारे सिखाने के दिन हैं'. - हाँ इतना अवश्य है कि बहु - पोतों को सिखाने के नाम पर ये कुछ भी सीख सकती हैं। कुछ ऐसा रास्ता सोचना पड़ेगा, जिससे इनके सिखाने के अहं की तुष्टि भी हो जाए और उन्हें सही राह भी मिल जाए। अभी तो इनसे कुछ कहना ही व्यर्थ है। अभी ये मौज-मस्ती के मूढ़ में हैं, अत: उचित अवसर नहीं। **अवसर की पहचान**

ही मनुष्य की सफलता का पहला कदम है। जो यह नहीं जानता असफलता उसकी नियति बन जाती है। - ऐसा विचारकर मैं उस समय चुप ही रही थी।

कल शाम रोज की तरह जब गार्डन में मिलेंगी, तभी उनसे कुछ कहूँगी। आज थकान भी बहुत हो रही है। शेष कल।

भक्ति

विवेकी 2 JAN 1974

आज तबियत जरा सुस्त सी महसूस हो रही थी, अत: मैं घूमने नहीं गई । ध्वनि तो मेहमानों की विदाई में व्यस्त है और मैं देशना के ख्यालों में ।

'देशना' मेरी कल्पना, मेरा स्वप्न, मेरी रचना, मेरा ख्वाब । मैंने उसे गढ़ा है, मैंने उसे ढाला है, अपने ख्वाबों के अनुरूप । मैंने क्या ढाला है, बस उसके उपादान में शक्ति थी और मैं निमित्त बन गई; पर कहने में तो यही आता है ।

सुंदर गोल- मटोल सी नन्हीं गुडिया सी देशना की पैनी बुद्धि व अपूर्व स्मरणशक्ति पर मेरी दृष्टि गई तो मैनें उसे अपने संरक्षण में लेने का विचार बनाया । सही कहा है 'पूत के लक्षण पालने में ही नजर आ जाते हैं ।'

पति की ट्रान्सफरवाली नौकरी तथा बीमार सासु माँ की सेवा में व्यस्त मेरी नातिन ध्वनि ने जब 5 वर्ष की नन्हीं देशना को मेरे पास रखने की इच्छा जाहिर की तो मैंने सहर्ष स्वीकार कर लिया था । 'अंधा क्या चाहे दो आँखे', बस मैं भी स्वयं यही चाह रही थी ।

रूप की स्वामिनी उस बुद्धिमती को मुझे विवेक के सिंहासन पर बैठना था । जिद्दी, अधीरा और मौनव्रती उस रूपमती को मुझे दृढ़निश्चयी, धैर्यवान व मुखर बनाना था ।

मैं चाहती थी कि वह न केवल अपने मन की बात ही सबके सम्मुख प्रस्तुत कर सके, अपितु सभाओं में धाराप्रवाह बोल भी सके । अपने विचारों पर दृढ़ रहते हुए भी, बड़ों की इच्छा का सन्मान करे । बड़ों का सम्मान करे, पर अन्याय के सामने झुके भी नहीं । वह आचरण में अत्यंत कठोर होते हुए भी, कोमलहृदया हो । दृढ़निश्चयी होते हुए भी परिवर्तनशीला हो । ऋषभदेव की सुन्दरी सी वह सुन्दर थी ही, ब्राह्मी सी विवेकी मुझे बनाना था ।

बार-बार मेरा ही मन प्रश्न करता - क्या ऐसा विरोधाभास किसी व्यक्ति में संभव है? पर मुझे लगता **विवेकी को कुछ भी असंभव नहीं ।** अत: मैनें प्रयास जारी रखा । मुझे लगता है मैं अपने प्रयास में सफल हुई हूँ । विवेकी तो वह बन गई है, उसकी शादी ही उसका उदाहरण है ।

हुआ यों कि एक दिन में अपने एक सम्पन्न परिचित की शादी में देशना के साथ गई । जहाँ मेरी मुलाकात एक पुरानी सहेली चेतना से हुई, जो कि अपने पोते भव्य के साथ वहाँ

आई हुई थी । भव्य के व्यक्तित्व व शिक्षा से प्रभावित होकर मैंने देशना के साथ संबंध की बातचीत की इच्छा से उसे घर पर भोजन को आमंत्रित किया । देशना के रूप और सभी- गुणों पर मुग्ध चेतना ने भी आमंत्रण तुरंत स्वीकार कर लिया ।

दूसरे दिन जब हम डायनिंग टेबिल पर बैठे तो शादी में हुई पैसों की बर्बादी पर चर्चा छिड़ गई । बातचीत के बीच में भव्य ने कहा - दादी माँ, मेरा तो मन ही नहीं होता इन शादियों में जाने का । लड़के - लड़कियों को तो कार्टून बना दिया जाता है । कभी मूसर चलाना, तो कभी चिड़िया मारना, तो कभी आटे में लिखना - पता नहीं कैसे -कैसे नेगचार किए जाते हैं । घोड़े पर बेठने को ही लो, पुराने जमाने में जब आवागमन के साधन नहीं थे, तब यह उचित था, पर अब आधुनिक साधनों के होते यह नाटक क्यों? आखिर क्यों? क्या औचित्य है इनका?

तभी देशना बोली - लड़की बेचारी का तो और भी बुरा हाल होता है, कठपुतली बना दिया जाता है । ब्यूटीशियन से मेकअप कराने के बावजूद भी तेल लगाया जाता है, हल्दी लगाई जाती है, और न जाने कितने नाटक कराए जाते हैं, मैं तो नहीं करनेवाली यह सब नाटकबाजी । दरवाजे पर चिडिया मारने को ही लो । हम अहिंसक जैनों का यह हिंसक आचरण कहाँ तक उचित है? क्या कभी विचार किया किसी ने इस पर?

उन दोनों के ये विचार सुनकर मैंने भव्य से पूँछा, - 'बेटा । तुम कैसी शादी पसंद करते हो?' भव्य ने कहा - 'दादी माँ, मेरा तो विचार है कि वर - वधु सकुटुम्ब मन्दिर जाएँ, देवदर्शन करें, पूजा-पाठ करें, तदुपरान्त शास्त्र साक्षीपूर्वक उपस्थित मेहमानों के सामने फेरे कर लें ।' देशना ने संशोधन किया - 'फेरों की भी क्या जरूरत है? वरमाला ही सफिशिएन्ट है । पहले राजाओं में भी तो वरमाला ही हुआ करती थी ।'

भव्य ने गंभीरतापूर्वक कहा - 'तुम ठीक कह रही हो, किन्तु फेरे के बिना शादी अभी सभी के गले नहीं उतरेगी। अत: वह आवश्यक है ।'

इस पर भव्य की बहन दृष्टि बोली - 'अभी आप दोनों बड़ी-बड़ी बातें कर रहे हैं । पर जब शादी होगी तो यही सब अच्छा लगने लगेगा । नहीं भी लगेगा तो समाजवालों व ससुरालवालों की इच्छा के आगे झुकना ही
पड़ेगा ।' तभी देशना व भव्य एक साथ बोल पड़े - 'हम ऐसे व्यक्ति व घर में शादी ही नहीं करेंगे ।' यह सुनकर ताली बजाते हुए देशना की बहन चपल चंचल बोली 'तो

फिर दोनों ही कुँआरे रह जाओगे ।' जवाब में फिर दोनों एक साथ बोले - 'कोई तो इस दुनिया में ऐसा विवेकी व हिम्मतवाला होगा ।'

मजाक के लहजे में चंचल बोली -'हैं, ना; क्यों नहीं हैं? दूर ढूँढने क्यों जाते हो? तुम दोनों ही तो हो एक से विचारों वाले, हिम्मतवाले । कर लो दो विवेकियों की उदाहरण उपस्थित करती बिना बैंड़ बाजों की शादी ।'

समाज में प्रचलित दहेज प्रथा को दूर करने व नए आदर्शों को प्रस्तुत करने की प्रबल इच्छा के सम्मुख उनकी भावना हार गई और इस प्रकार पांच- पांच वर्षों तक शादी न करने की भावना लिए बैठे उन दोनों की शादी पांच दिन में हो गई । आखिरकार भावना के सम्मुख विवेक जीत गया ।

कितना चंचल है यह मन! मन की गति तो अवाध है, निर्बाध है । कोई समय सीमा नहीं मन के लिए । मन तो वर्तमानवत् ही भूतकाल में भी निर्द्वंद घूमता है । बस जरा सहारा चाहिए, बहाना चाहिए । इस मन के भूतकाल में विचरण को ही तो स्मृतियाँ कहा जाता है, यादें कहा जाता है । यादें अच्छी हों या बुरी - सदैव दुःखदायी ही होती हैं । अतः मैं हमेशा इनसे बचने का प्रयास करती रहती हूँ । पर फिर भी.....।

अब बाहर से आने वाले सभी मेहमान विदा हो गए हैं । पर घर की सभी बहुएँ, बेटियाँ और परिवारवाले हैं । मुझे उन सबको अपनी ज्ञान -शक्ति,चेतना - शक्ति का अहसास कराना है । मुझे तो सबके मन में एक ही मंत्र फूँकना है कि हम कोमल हैं, कमजोर नहीं; हम सशक्त हैं, समर्थ हैं, हम दुःख की जड़ का नाश इस भव में कर सकते हैं, परिपूर्ण सुखी होने का मार्ग प्रशस्त कर सकते हैं । हम सभी जीव हैं, हममें ज्ञान शक्ति हैं । ज्ञान की शक्ति अनन्त हैं । **जो ज्ञान को ज्ञान में ही समेटता है, वही आनन्द की अनुभूति करता है, वही सुखी होता है ।** मुझे यह जानने में 74 वर्ष लगे पर मैं इसका अहसास इन्हें अभी से कराना चाहती हूँ ।

यह सब उन्हें समझाने के लिए घर में तत्त्वचर्चा करनी होगी, पण्डितजी के प्रवचन में भी ले जाना होगा । पण्डितजी का प्रवचन सुनकर इन्हें भी सही बात समझ आ जाए तो इनका जीवन भी परिवर्तित हो जाए ।

अब मैं जाकर सभी को सुलाती हूँ ताकि सभी सुबह जल्दी उठ सकें।

भक्ति

दुःखी कौन 3 JAN 1974

दुःख! दुःख!! दुःख!!! एक शाश्वत सांसारिक सत्य । तीन लोक व तीनों कालों में संसार में पैदा हुआ कोई भी प्राणी ऐसा नहीं है, जो दुःखों को न भोगता हो । अपितु यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि जन्म से लेकर मरण पर्यन्त प्रत्येक प्राणी प्रत्येक समय दुःखों का ही सामना करता रहता है ।

आज जब मंदिर में दुःख दूर करने का व सुख पाने की ललक जगानेवाला प्रवचन सुना तो मैं स्मृतियों में डूब गई । उस दिन भीं पंडितजी इसी प्रकार कह रहे थे -

' जे त्रिभुवन में जीव अनंत, सुख चाहें दुःख ते भयवंत ॥ '

अर्थात् संसार के समस्त प्राणी सुख चाहते हैं, व दुःख से डरते हैं....।

पड़ितजी ने आगे क्या बोला? मैनें नही सुना था । तब मेरा बालमन तो ' दुःख ' पर ही अटक गया था । प्रवचनोपरांत मैनें पड़ितजी पर प्रश्नों की झड़ी लगा दी थी ....।

पड़ितजी आप गलत कहते हैं । सब लोग कहाँ दुःखी हैं? बड़े जन तो सब सुखी ही हैं । जैसे- स्कूल में टीचर सुखी हैं । हम बच्चों को मनमर्जी डांटना, मारना, सजा देना - सब उनके हाथ में हैं । घर में भी दादा - दादी सुखी ही हैं, सब उनकी आज्ञा मानते हैं । मम्मी- पापा का तो कहना ही क्या है? उनके मन में जो आता है, वे सब कर सकते हैं, सब उनकी मर्जी से चलते हैं, वे लोग तो अपनी मनमानी करते हैं; दुःखी तो हम बच्चे हैं, जिनपर सभी बड़े आज्ञा चलाते हैं, न मानो तो मारते हैं । कभी बड़ों को भी कोई मारता है? और तो और पैसा भी उनके पास रहता है; जो खरीदना हो, उनकी मर्जी,न खरीदना हो तो भी उनकी मर्जी, घूमना- फिरना, उठना- बैठना सब उन बड़ों की मर्जी से ही होता है, तो फिर वे दुःखी कैसे? क्या दुःख है उन्हें? पुलिस, सैनिक सभी सुखी हैं, सब पर खूब रौब झाड़ते हैं । महल जैसे घरों में रहने वाले मंत्री-प्रधानमंत्री आदि को क्या दुःख है? मेरी सहेली के पास भी इतना बड़ा घर और गाड़ी है, नौकर-चाकर हैं; वह तो हमेशा हँसती- खेलती रहती है - इन सबको दुःख कहाँ हैं? दुःख होता तो, ये खुश कैसे होते? यदि वे खुश हैं, तो संसार के समस्त प्राणी दुःखी कैसे हैं? यदि वे भी दुःखी हैं तो फिर सुखी कौन है? क्या हमारा भी दुःख दूर हो सकता है? क्या हम भी सुखी हो सकते हैं? संसार के समस्त प्राणी दुःखी कैसे हैं? सुना है कि स्वर्ग में तो सुख ही सुख है । तभी

तो सभी स्वर्ग जाने की कामना करते हैं। क्या वे भी दु:खी हैं? यदि हाँ, तो क्यों? आखिर क्यों?

पंडितजी ने इसका जवाब देते हुए कहा था कि - "दु:ख अनेक प्रकार के होते हैं - क्या यह भी बताना पड़ेगा। अरे, इसके तो हम सब भुक्त भोगी हैं। हम दिन रात अनंत दु:खों का ही तो अनुभव करते रहते हैं, अत: कभी- कभी हमें कम दु:ख, दु:ख ही नही लगते। यहाँ तक की कभी-कभी तो कम दु:ख में हमें सुख का आभास भी हो जाता है। जैसे तुम्हीं कल कह रही थीं कि - 'टीचर, दादा दादी, मम्मी-पापा आदि तो सुखी हैं - बस बच्चे ही दु:खी हैं।' तुम अपने मम्मी-पापा से पूँछना, वे भी यही सोचते होंगे कि - 'बच्चे कितने सुखी हैं, न कोई जिम्मेदारी, न चिन्ता। बस मजे से खेलो, खाओ और सो जाओ। काश हमारा भी बचपन लौट आए।' दूसरी बात एक तरफ तो तुम सभी बच्चों को दु:खी कह रही थी; दूसरी तरफ अपनी सहेली को सुखी बता रही थी। यदि सभी बच्चे दु:खी हैं, तो फिर तुम्हारी सहेली भी दु:खी ही होगी। देखो बेटा! हमें अपने कष्ट तो नजर आते हैं, दूसरों के नहीं, इसलिए बस हम सभी दुसरों को सुखी समझते रहते हैं। वास्तव में हैं सभी दु:खी। दु:खों के तो हम सम्राट हैं। दु:खों की चर्चा करना तो नाना के आगे ननिहाल की चर्चा करना जैसा ही होगा। यद्यपि प्रत्येक जीव अपना सारा जीवन दु:ख दूर करने में ही लगा देता है। उसके जीवन की प्रत्येक क्रिया सुख प्राप्ति के लिए ही होती है किन्तु इस जीव को संसार में सुख कहीं नहीं मिलता। वास्तव में तो हमने सच्चे सुख को पहचाना ही नहीं है, जाना ही नहीं है। सच्चा सुख पर में नहीं, अपने में हैं। हमारी अपनी ही पहचान हमें नहीं हैं। हम सबको जानते हैं, पहचानते हैं; पर अपने को ही नहीं जानते, नहीं पहचानते। अपने को पहचाने बिना हम सुखी कैसे होंगे? कैसे? **सुखी होने का तो मात्र एक ही उपाय है - अपने को जानना, पहचानना; अपने में जमना - रमना।** हमें सच्चे सुख को समझकर उसकी प्राप्ति ही का उपाय करना चाहिए। संसार के सभी जीव सुखी हों- इसी भावना से मैं विराम लेता हूँ।"

पंडितजी की कही गयी उक्त बातें मेरे मन में बैठ गईं थीं और मैंने सुख प्राप्त करने की ठान ली थी।

देखा! ये मन कैसा है? प्रवचन में बैठे- बैठे भूतकाल में चला जाता है, बस

जरा सा बहाना चाहिए। चित्त चंचल हुआ व आगे का प्रवचन रह गया। अब कल से अधिक उपयोग की एकाग्रता से प्रवचन सुनूंगी तथा इन पण्डितजी की प्रवचन की सारी कैसेट भी लूँगी ताकि घर पर बार-बार सुनी जा सके। बार-बार सुनने से ज्ञान में निर्मलता आती है। आगे पण्डितजी ने क्या कहा? यह सुनकर फिर लिखूँगी। लिखने से बात पक्की हो जाती है, मन में बैठ जाती है। शेष कल।

भक्ति

क्या है सुख? 18 FEB 1974

सुख! सुख!! सुख!!! सभी चाहते हैं सुख । डरते हैं दु:ख से । दूर करना चाहते हैं दु:ख को । दु:ख दूर करने के लिए तथा सुख की खोज में प्रत्येक जीव मृगमरीचिका के समान संसार के रेगिस्तान रूपी चारों गतियों में घूमता रहता है, पर कहीं नहीं मिलता सुख । क्यों? आखिर क्यों??

वास्तविक सुख है क्या? वस्तुत: सुख कहते किसे हैं? क्यों नहीं मिलता सांसरिक प्राणियों को सुख? क्या गल्ती है हम सब की? मूल में ही भूल रह जाएगी तो भूल जाएगी कैसे?..... आदि नाना प्रश्न आज पुन: उठ रहे थे मेरे मन में । नहीं निकल पा रही थी इन उलझनों से। कभी बच्चे टोकते तो कभी नौकर । अत: मैं शांति से विचार करने मंदिर चली गई ।

मंदिर में बाहर से पधारे विद्वान पंडित जी का प्रवचन 'सुख क्या है' विषय पर ही था । मैं भी सुनने बैठ गई । पंडित जी बोल रहे थे.....

"प्राय: सामान्यजन भोग- सामग्री को सुख साम्रगी मानते हैं और उसकी प्राप्ति को सुख की प्राप्ति समझते हैं, अत: उनका प्रयत्न भी उसी ओर रहता है । उनकी दृष्टि में सुख कैसे प्राप्त किया जाए का अर्थ होता है 'भोग - सामग्री कैसे प्राप्त की जाये?' उनके हृदय में **सुख क्या है**? इस तरह का प्रश्न ही नहीं उठता, क्यों कि उनका अंतर्मन यह माने बैठा है कि - भोगमय जीवन ही सुखमय जीवन है "।

पंडित जी धारा प्रवाह बोले जा रहे थे, पर मैं फिर स्मृतियों में डूब गई, खो गई । पंडितजी के कहे गए प्रत्येक शब्द हथौडे की तरह चोट कर रहे थे मेरे मानस पर । ऐसा लग रहा था मानो पंडितजी अंतर्मयामी हो, उन्होंने मेरे मन की बात पढ़ ली हो तथा मुझे लक्ष्य करके ही प्रवचन कर रहे हों । मैं भी तो बचपन से आज तक यही गल्ती करती आ रही थी । मैं भी तो भोगों में ही सुख खोज रही थी । कैसे मिलता मुझे सुख? गल्ती मेरी ही थी । मैंने ' सुख क्या है ' कभी जानने की कोशिश ही नहीं की । मैं तो ' सुख कहाँ है ' पूँछती रही और दौड़ती रही, दौड़ती रही । पर कहीं नहीं मिला सुख; क्योंकि बचपन में तो मैं इच्छाओं की पूर्त्ति को तथा जवानी में तात्कालिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति में ही सुख समझने लगी थी ।

ऐसा नहीं है कि ये गल्ती हम जैसी बिना पढ़ी-लिखी महिलाएँ ही करती रहीं हैं, अपितु ऐसी गल्ती तो आज का पढ़ा-लिखा प्रबुद्ध जागरुक वर्ग भी करता आ रहा है । बस अंतर यह है कि हम अनपढ़ महिलाएँ घर -गृहस्थी व बच्चों में सुख मानती रहीं हैं व आज के प्रबुद्ध वर्ग भोगमय जीवन को ही सुखमय जीवन समझते हुए कहता है कि - 'जब प्रत्येक व्यक्ति के पास आधुनिक और वैज्ञानिक सुख-सुविधाओं से युक्त बंगला होगा; खाना-पीना, पहनना-ओढ़ना आदि जीवनोपयोगी वस्तुओं की कुछ कमी न होगी, तब सभी सुखी हो जाएँगे ।' - उक्त कथन करने वालों का ध्यान इस ओर जाता ही नहीं है कि यदि उक्त समस्त भोग सामग्री की प्राप्ति में ही सुख होता तो फिर जिनके पास ये समस्त भोग सामग्री उपलब्ध है ऐसे टाटा, बिडला या धन कुबेर कहे जाने वाले बिलगेटस भी दु:खी क्यों? अथवा जो देश उक्त समृद्धि की सीमा छू रहे हैं, वहाँ भी सभी दु:खी और अशांत क्यों? सभी हम जैसे ही आकुल-व्याकुल और अशांत हैं, भयाकुल और चिंतातुर हैं; कहीं कोई सुखी नहीं है? अत: वास्तविक सुख क्या है और वह कहाँ है? इसका निर्णय किए बिना इस दिशा में सच्चा पुरुषार्थ नहीं किया जा सकता है और न ही सच्चा सुख प्राप्त किया जा सकता है । सच्चा सुख प्राप्त करने के पहले हमें यह जानना आवश्यक है कि सुख कहाँ है? इसकी चर्चा कल करेंगे ।

भक्ति

कहाँ है सुख ? 24 MARCH 1974

चंचल मन के बारे में जितना कहा जाए कम है । स्थिर रहना तो इसने सीखा ही नहीं है । कौन क्या कह रहा है? क्या कहना चाहता है? पहिले क्या कहा था?..... आदि प्रयोजनभूत बातों पर विचार किए बिना ही बस आधा-अधूरा सुनता है और दौड़ पड़ता है । फुर्सत कहाँ है उसे पूरी बात सुनने की? जरूरत क्या है आगे-पीछे के संदर्भ बिठाने की? न, न, न । गलत कह गई मैं । दुनियाँदारी में तो हम बहुत होशियार हैं । बिना बताए ही संदर्भ समझ जाते हैं । वर्षों पहिले कही बातों को भी आज से जोड़कर लड़ना शुरू कर देते हैं । आगा-पीछा सब सोचते हैं, विचारते हैं; फिर बोलते हैं । नहीं, पर धर्म में नहीं । धर्म के मामले में तो हम बस चंचल मन की चंचलता का पूरा उपयोग करते हैं । यथा नाम तथा गुणवाली अधीरा के साथ भी आज यही हुआ ।

बहुत दिनों बाद आज जब शाम को गार्डन में बैठी तो पंडितजी के प्रवचन की चर्चा चल पड़ी । बस अधीरा शुरू हो गई -बहनों! कल पंडितजी के प्रवचन से तो मेरी आँखे खुल गई । कितनी सही बात बताई उन्होंने - 'भोग- सामग्री में सुख नहीं, सुख-दु:ख तो कल्पना में है । सुख पाना हो तो झोंपड़ी की तरफ देखो, अपने से दीन-हीन की तरफ देखो । अपने से कम भोग-सामग्री वालों की ओर देखो, सुखी हो जाओगे । यदि तुम्हारी दृष्टि अपने से अधिक वैभव वालों की ओर रही तो सदा दु:ख का अनुभव करोगे ।' पूरी बात तो मुझे याद नहीं आ रही, पर इसे समझाने के लिए उन्होंने एक उदाहरण दिया था कि -'मानो एक आदमी का मकान पाँच मंजिल का है, पर उसके दाहिने ओर सात मंजिला मकान है तथा बायीं ओर एक झोपड़ी है । जब वह दायी ओर देखता है तो दु:खी अनुभव करता है और जब वह बायीं ओर देखता है तो सुखी; अत: सुख-दु:ख भोग-सामग्री में न होकर, कल्पना में है ।'- मुझे पंडितजी की यह बात सही भी लगी क्योंकि एक बार की बात है मैं अपने पैर दर्द को दिखाने के लिए हॉस्पिटल गई थी, तो बहुत दु:खी थी, पर जब वहाँ जाकर देखा कि किसी का पैर कटा है तो, किसी का हाथ..... न जाने कैसी - कैसी भयंकर बीमारियाँ थीं लोगों को? वह सब देखकर मैं तो अपना दु:ख ही भूल गई, लगा मैं तो बहुत सुखी हूँ .....। मैंने उसे बीच में समझाने की बहुत कोशिश की, पर अधीरा में धैर्य कहाँ? वह जब बोलती है तो किसी का सुनती नहीं । वह क्या लगभग सभी के साथ ही तो ऐसा होता है कि अपनी धुन में मस्त जब भी कोई बोलता

है तो बस बोलता ही जाता है । सामने वाले की सुनने की उसे फुर्सत कहाँ? और जरूरत भी क्या? अधीरा को सही बात बताने के लिए मैं उचित समय का इंतजार कर ही रही थी कि तेज - तर्रार तेजस्विनी ने तीखेपन से कहा -

'वाह! अधीरा वाह!! क्या बात कही तुमने!!! सुख कल्पना में है, सुख पाना है तो दीन- हीनों की तरफ देखो । बहना, दुखियों का दु:ख देखकर तो लौकिक सज्जन भी दयार्द हो जाते हैं । दुखियों को देखकर ऐसी कल्पना करके अपने को सुखी मानना कि मैं इनसे उच्च हूँ, इनके दु:ख के प्रति अकरूण भाव ही तो है । अकरूण भाव अथार्त क्रूरपरिणाम । क्या क्रूरपरिणामों वाला भी कभी सुखी हो सकता है? दूसरी बात दूसरे को दीन- हीन मानकर संतुष्ट होने से तो अपने ही मानकषाय की पुष्टि होती है । भला कषायों में भी कभी सुख होता है? तीसरी बात क्या सुख झोंपड़ी में भरा पड़ा है, जो उसकी ओर देखने से आ जाएगा । नहीं,नहीं; जो कुछ तुमने कहा है, उसे सुख कभी नहीं कहा जा सकता है । सुख तो कोई जुदा वस्तु ही है; जहाँ सुख है, जब तक उसकी ओर दृष्टि नहीं जाएगी तब तक सच्चा सुख प्राप्त नहीं होगा ।'

इस पर अधीरा बोली - 'मैं ये सब अपनी तरफ से थोड़े ही कह रही हूँ । ये सब तो पंडितजी ने कहा था, है न नन्दा, तुम भी तो थीं प्रवचन में ।'

मैं कुछ बोलती उससे पहले ही तेजस्विनी ने कहा -'गलत बात तो गलत ही होगी, चाहे तुम बोलो या तुम्हारे पंडितजी.....।'

बात पंडितजी तक पहुँच गई थी, अत: मुझे वस्तुस्थिति का तुरन्त खुलासा करना ही उचित लगा क्योंकि **गलतफहमी जितनी जल्दी दूर कर दी जाए, उतना ही उत्तम रहता है ।** अत: मैंने कहा - 'तेजस्विनी तुम सही कह रही हो । सुखी होने का उक्त उपाय सही नहीं है, न ही सुख कल्पना में ही है.....।'

मेरी बात बीच में ही काटकर अधीरा बोली - 'अरे नन्दा! तुम भी ऐसे बोल रही हो, तेजस्विनी तो नास्तिक है पर तुम तो पंडितजी को मानती हो, भक्त हो उनकी । क्या पंडितजी भी कभी गलत बोल सकते हैं? '

'नहीं अधीरा, पंडित जी ने गलत नहीं कहा है; पर तुमने गलत समझा अवश्य है । अच्छा एक बात बताओ- क्या तुमने पंडित जी का प्रवचन शुरू से अंत तक पूरा सुना है ।' - मैंने पूँछा

'नहीं मैं शुरु से कहाँ पहुंच पाती हूँ? पूजा-पाठ करते करते दस-पंद्रह मिनिट की देरी हो ही जाती है और फिर ज्यादा देर बैठा भी तो नहीं जाता; सो बस थोड़ी देर सुनकर ही घर वापिस आ जाती हूँ।' - अधीरा बोली।

मैंने फिर पूँछा-'अच्छा ये बताओ कभी पिक्चर आधी देखी है?'

अधीरा बोली - 'तुम बात न बदलो, पहिले मेरी बात का जवाब दो। जहाँ तक पिक्चर का सवाल है, सो भला आधी पिक्चर भी कोई देखता है। शुरु से न देखो तो कुछ स्टोरी ही समझ नहीं आती, मजा भी नहीं आता।'

मैंने कहा - देखो अधीरा! जब एक पिक्चर की स्टोरी आदि-अंत देखे बिना समझ में नहीं आती, तो तत्त्व की गहरी बातें आधे-अधूरे सुनने से कैसे समझ में आएगी। अब सुख के संदर्भ में ही लो - पंडितजी ने प्रारंभ में कहा था कि - 'कुछ लोग कहते हैं कि - भोगसामग्री में सुख न होकर, कल्पना में सुख है' - यहाँ तुमने प्रथम वाक्य नहीं सुना तथा अंत में उन्होंने कहा था कि - "सुखी होने का यह उपाय भी सही नहीं है, क्यों कि यहाँ सुख क्या है?- इसे समझने का यत्न नहीं किया गया है, वरन 'सुख कहाँ है?' का उत्तर 'कल्पना में है' दिया गया है। वास्तविक सुख इन सबसे भिन्न है। वह सच्चा सुख क्या.....।"

मेरी बात पूरी भी न हो पाई थी कि कामना आकर बीच में ही बोल पड़ी - क्या कहा आंटी जी सुख! अजी कहीं नहीं है सुख! बचपन में हम सभी सोचते थे कि हम बच्चों को बहुत दु:ख हैं, जब बड़े होंगे तो - दु:खों का अन्त हो जाएगा; पढ़ाई-लिखाई से छुटकारा मिल जाएगा। खूब घूमेंगें-फिरेंगे, मस्ती मारेंगे,.....। और फिर जब बड़े हुए तो सोचने लगे .....। 'कैसे भूला जा सकता है, बचपन का वह अतुलित आनन्द?' - इसी प्रकार जब जीव मनुष्य होता है, तो उसे देव सुखी प्रतीत होते हैं और जब स्वर्ग में होता है, तो भगवान बनने की इच्छा करता हुआ वही जीव मनुष्य गति की चाह करने लगता है।'इच्छा' - इस इच्छा का तो कोई अन्त नहीं है ....। तेजस्विनी ने उसे टोका - बस-बस बहुत हो गया कामना। अब इच्छा की तो तुम मास्टर हो, तुम्हारा नाम ही है 'कामना'! तुम अभी-अभी आई और बीच में ही शुरु हो गई। कल से सात बजे आओ और जो बोलना है बोलो। इतना कहकर सभी अपने-अपने घर चले गए। मैं भी इच्छा के बारे में विचार करने लगी, कल इसी पर चर्चा करूँगी। **भक्ति**

आज कामना पूरी तैयारी से समय पर आई थी। आते ही उसने पंडितजी की शैली में बोलना शुरु किया –"इच्छा! इच्छा!! इच्छा!!! चाह, कामना, बांछा - न जाने कितने नाम हैं इस दुष्टा के! कहाँ नहीं ले जाती यह! क्या-क्या नहीं करवाती यह! हर नाम के साथ रूप बदलने वाली इस वेश्या का सहवास जो जीव करता है, उसकी वैसी ही गति होती है जैसे कि - वेश्यागामी पुरुष की। जिस प्रकार काम के वशीभूत होकर मानव कामिनी के समागम की कामना करता है, उसी प्रकार इच्छा के वशीभूत होकर जीव स्वयं को अच्छे लगने वाले परपदार्थों का सामीप्य व बुरे लगने वाले पदार्थों की दूरी की चाह करता है।

हमारे दु:खों का मूलकारण भी यही है, क्योंकि इच्छाओं का तो कोई अन्त नहीं, अनन्त इच्छायें होती हैं हमारे मन में। हमारा मन तो इच्छाओं का भंडार ही है। एक बार कुबेर का खजाना भले ही खत्म हो जाए, पर इच्छायें! नहीं, वे कभी समाप्त नहीं होती, हों भी कैसे? वे तो नित नई उत्पन्न होती रहती हैं। एक इच्छा पूरी होती है तो दूसरी उसी क्षण उत्पन्न हो जाती है। यही नहीं हमारा मन तो एक इच्छा के पूरी होने का इंतज़ार भी नहीं करता, वह तो उसके पूरी होने से पूर्व ही दूसरी इच्छा कर लेता है -- इस प्रकार कभी समाप्त न होने वाला इच्छाओं का प्रवाहक्रम चलता ही रहता है। अत: यह तो निश्चित ही है कि नित्य बदलती हुई नवीन इच्छाओं की पूर्त्ति कभी संभव नहीं और न ही यह जीव इच्छाओं की पूर्त्ति से सुखी होने वाला है क्योंकि इच्छा व दु:ख का साथ तो चोली-दामन के साथ जैसा ही है।

वस्तुत: तो इच्छाओं की पूर्त्ति में सुख है ही नहीं, यह तो सिर का बोझ कंधे पर रखकर सुख मानने जैसा है। इच्छाओं में सुख ढूँढना तो सौ घोड़ों में एक घोड़ी ढूँढने जैसा ही है। यदि कोई कहे जितनी इच्छायें पूर्ण होंगी, उतना तो सुख होगा ही, पूरा न सही - यह बात भी ठीक नहीं है; कारण कि सच्चा सुख तो इच्छाओं के अभाव में है, इच्छाओं की पूर्त्ति में नहीं, क्योंकि हम इच्छाओं के आंशिक अभाव में आकुलता की कमी प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं। अत: यह सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि इच्छाओं के पूर्ण अभाव में पूर्ण सुख होगा ही। यदि यह कहा जाए कि इच्छा पूर्ण होने पर तो समाप्त हो जाती है, अत: उसे सुख कहना चाहिए - यह कहना भी गलत है, क्योंकि

इच्छाओं के अभाव का अर्थ इच्छाओं की पूर्त्ति होना नहीं, अपितु इच्छाओं का उत्पन्न ही नहीं होना है। आखिर इच्छा से दु:ख हो भी क्यों नहीं? वह तो होगा ही न! क्योंकि उसके मूल में मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व है तो संसार है, संसार है तो दु:ख तो अनिवार्य ही है न। अनादिकाल से हम इन इच्छाओं के सागर में डूबते-उतराते आ रहे हैं। किसी कवि ने सही कहा है -'युग-युग से इच्छा सागर में प्रभु गोते खाता आया हूँ।'

दु:ख तो आकुलतामय ही है और आकुलता इच्छा होने पर होती है। इच्छायें अनेक प्रकार की होती हैं और दु:ख भी अनेक प्रकार के....."

कामना की इस धाराप्रवाहता को बीच में ही रोकते हुए दु:खी ने कहा - "अजी! आप किस-किसके कितने दु:ख गिनाओगी। इस जगत में अनंतानंत जीव हैं तथा एक - एक जीव के अनंत दु:ख हैं। अब मुझी को लो बेटे की अभिलाषा लिए मेरे माँ-बाप ने जब आठवी संतान के रूप में मुझे पाया तो त्रस्त होकर उन्होंने मेरा नाम ही 'दु:खी' रख दिया।"

तेजस्वनी ने टोका - ' अरे दु:खी! यहाँ तत्त्वचर्चा चल रही है, तुम अपनी चर्चा लेकर क्यों बैठ गई। तुम कोई अनूठी तो नहीं हो। यहाँ तो घर-घर की यही कहानी है। ये सात लड़कों में आठवी लड़की है, अत: 'संपत्ति' है और वह लड़कियों में आठवी लड़की अत: 'विपत्ति' है। भक्ति की पाँचवी बहन 'आपत्ति' ही तो है। सीमा भी.....।'

'बस, बस रहने भी दो बहना। यहाँ हम किसी व्यक्ति विशेष के दु:ख नहीं गिना रहे। सबकी अपनी-अपनी समस्यायें हैं, अपने - अपने दु:ख। यहाँ तो दु:ख के उन सामान्य कारणों की चर्चा चल रही है जिनसे जगत के समस्त प्राणी दु:खी हैं तथा जिन्हें दूर कर हम सभी सुखी हो सकते हैं। कामना बहन इच्छाओं के बारे में अच्छा विश्लेषण कर रही थीं, और भी कुछ बताओ बहन जी' - जिज्ञासु जिजीविषा ने आग्रह किया।

तभी अधीरा ने कहा - अभी आपने कहा कि इच्छायें अनन्त होती हैं, जबकि पंडित जी तो कह रहे थे कि इच्छा चार प्रकार की होती हैं - (1) विषय (2) कषाय (3) पाप का उदय और (4) पुण्य का उदय।

ये चारों ही इच्छा मेरे समझ में नही आई क्योंकि किसी चीज को पाने की चाह ही तो इच्छा है और विषय तो SUBJECT को कहते हैं, तो फिर किसी को SUBJECT की क्या इच्छा हो सकती है? हाँ यह माना कि पुण्य के उदय की इच्छा

तो सबको हमेशा रहती है, पर पाप और कषाय.....। भला, कोई पाप के उदय की भी इच्छा करता है? वह कोई पागल ही होगा जो पाप के उदय की इच्छा करे, विवेकी तो ऐसा करने से रहा।

कामना ने कहा - 'बहन जी! मैं तो दुनिया में जो देखती हूँ, अनुभव करती हूँ - वही कह देती हूँ, पर इन शास्त्रीय बातों में अपनी पकड़ नहीं। भक्ति बहन जी! आप तो दिन-रात शास्त्र ही पढ़ती- रहती हो, अत: इनकी शंका का समाधान तो आप ही कर सकती हैं। आप ही कुछ बताइए।'

मैंने कहा - 'तुमने तो एक साथ कई प्रश्न कर दिए हैं, सबका संक्षेप में समाधान संभव नहीं .....।'

अधीरा ने बीच में ही कहा - 'आप विस्तार से समझाइए। हम भी तो यही चाहते हैं, संक्षेप में कही बातें हमें समझ ही कहाँ आती हैं?'

पर आज समय अधिक हो गया है, अत: कल .....।

ना, बहना, ना। हम लोग उम्र के जिस पड़ाव पर हैं उसमें कल किसने देखा है? पता नहीं कल रहें या ना रहें, अत: **काल करे सो आज, आज करे सो अब** युक्ति के अनुसार आप तो अभी ही समझाइए।

ठीक है; जैसी आप सब की मर्जी। पर सभी एक बात का ध्यान रखना बीच में मुझसे कुछ प्रश्न न करना, जो भी पूँछना हो अंत में पूँछना तथा पूरी बात सुने बिना कोई उठकर भी मत जाना।

'ठीक है, ठीक है' सभी ने कहा।

सिलसिलेबार समस्त शंकाओं का समाधान करती मैंने कहा - 'बहनों! इच्छायें तो अनन्त प्रकार की ही होती हैं, किन्तु मोटे तौर पर उन समस्त इच्छाओं को विद्वानों ने चार भागों में विभक्त किया है –

पहली इच्छा **विषय ग्रहण की इच्छा** है। हमें T.V देखने की, गाना आदि सुनने की तथा अव्यक्त को जानने की जो इच्छायें होती हैं, वे सब विषय ग्रहण की इच्छा के अन्तर्गत आती हैं। यद्यपि इस इच्छा में .....' 'यथा नाम तथा गुण' चंचल ने बीच में ही टोका - 'आंटी! जानने-देखने की इच्छा तो अच्छी बात है, हम दिन-रात अपने बच्चों को नए-नए विषयों को जानने-देखने-समझने तथा अव्यक्त नई-नई बातों

की प्रेरणा देते रहते हैं । यदि जानेंगें, देखेंगें नहीं; अज्ञानी रहेंगे तो सुखी कैसे होंगे? हम सब अमुल्य मनुष्यभव के 15 -20 साल और लाखों रुपये पढ़ाई पर खर्च करते हैं, वो किसलिए? सुखी होने के लिए ही! क्योंकि सुखी होने के लिए ज्ञान होना अनिवार्य है, ज्ञानी बनना आवश्यक है ।'

'आंटी एक बात मैं भी पूँछू?' - सौम्य सुशीला ने कहा ।

'हाँ, हाँ पूँछो -पूँछो । क्या बात है?' - मैंने कहा ।

'आंटी जानना-देखना तो आत्मा का स्वभाव है? फिर जानना-देखना दु:ख का कारण कैसे हो सकता है? क्योंकि यदि स्वभाव ही दु:ख का कारण हुआ तो फिर हम कभी भी सुखी नहीं हो सकते ।' - सुशीला ने कहा ।

'सही कहा तुमने! सुखी होने के लिए ज्ञान अनिवार्य है, पर किसका ज्ञान? पारमार्थिक सुख के लिए पारमार्थिक ज्ञान चाहिए । लैकिक ज्ञान से पारमार्थिक सुख नहीं मिलता । पारमार्थिक सुख की प्राप्ति के लिए ज्ञान की इच्छा नहीं करना है, ज्ञान में रहना है क्योंकि हम ज्ञान स्वरूपी हैं; ज्ञान हमारा स्वभाव है और स्वभाव कभी भी दु:ख का कारण नहीं हो सकता । परमसुखी होने के लिए सब कुछ छोड़कर मात्र स्वभाव में रहना है; पर जानने-देखने की इच्छा दुख का कारण है । यद्यपि जानने-देखने की इच्छा से अन्य तरह के कष्ट नहीं होते हैं किन्तु हम जब तक अन्य वस्तुओं को जानते-देखते नहीं हैं, तब तक व्याकुल होते हुए दु:खी होते रहते हैं । इन देखने-जानने और सुनने रूप समस्त इच्छाओं को ही शास्त्रों में **विषय** कहा है ।'आज समय बहुत हो गया है । कल अन्य तीन इच्छाओं पर चर्चा करेंगे ।

इस सब चर्चा - वार्ता से मैं बहुत खुश हुई । सब महिलाएँ बुद्धिमान हैं, चिंतनशील हैं । पर आज तक यह चिंतन , यह बुद्धि दूसरों के दोषों को खोजने में लगी है । यदि यही बुद्धि अपने दोषों को निकालने में लग जाए तो अपना कल्याण हो जाए । चिंतन की दिशा बदली और जीवन बदला । मेरे साथ भी यही हुआ था । इस सब चर्चा-वार्ता में उनके भी जीवन बदले, उनके जीवन में शांति आए यही मेरी भावना है ।

भक्ति

ये भी इच्छा हैं 26 MARCH 1974

आज मैं जानबूझकर गार्डन में थोड़ा लेट गई, ताकि सभी महिलाएँ आ जाएँ; पर आज सभी समय पर आ गई थीं और इच्छा के संदर्भ में ही चर्चा कर रहीं थीं ।

जिजीविषा कह रही थी -' देखा! कैसी विचित्र बात है? हम सुख की तलाश में दिन-रात दौड़ रहे हैं; पर सुख क्या है? कहाँ है? - यह जानते ही नहीं, समझते ही नहीं । सच्चे सुख के लिए कुछ करना नहीं है; बस 'करना' छोड़ना है, कर्तृत्वबुद्धि त्यागनी है। '

दु:खी ने कहा - "अजी! विडंबना तो यह है कि हम दु:ख क्या है? यह भी नहीं जानते! हम तो मात्र शारीरिक कष्टों और इच्छा के विपरीत कार्य होने को ही दु:ख मानते हैं । 'जानने की इच्छा भी दु:ख है' क्या कभी हमने यह सोचा था?"

तृप्ति ने कहा - 'अहा! कितना सटीक विश्लेषण किया कल बहन जी ने! इच्छा दु:खमय हैं, वह चाहे पाने की हो या ज्ञान की!'

अधीरा ने कहा - 'बहन जी ज्ञान की इच्छा तो हम करते हैं पर कषाय?.... कषाय करने की इच्छा तो कोई नहीं करता! सभी कषाय दूर करना चाहते हैं, तो फिर कषाय दूसरी इच्छा कैसे हुई?'

'देखो बहना! कषाय भावों के अनुसार कार्य करने की हमारी जो इच्छा होती है, वह दूसरी इच्छा है । जैसे - कभी हम क्रोध के वशीभूत होकर किसी का बुरा करना चाहते हैं, तो कभी मान के वशीभूत होकर किसी को नीचा दिखाना चाहते हैं - आदि किसी न किसी कषाय भाव के अनुसार ही हम कार्य करते रहते हैं और जब तक वह काम नहीं होता तब तक अत्यधिक व्याकुल होते हुए दु:खी ही रहते हैं ।' - मैंने कहा ।

'सही कहा बहन जी आपने! भले हम कषाय नाम से कषाय की इच्छा नहीं करते; पर स्वाभिमान आदि विभिन्न रूपों में कषाय भावों की ही इच्छा करते रहते हैं; उन्हें उपादेय मानते हैं ' - चिंतन ने कहा ।

'यह तो ठीक है, पर पाप के उदय की इच्छा तो कोई कर ही नहीं सकता, फिर वह इच्छा का तीसरा भेद कैसे हो सकता है?' - अधीरा ने कहा । मैंने अधीरा से पूँछा- 'तुम्हें जो पैर में दर्द है,वह पुण्य के उदय से या पाप के?'

पाप के - अधीरा ने कहा ।

अच्छा, तुम डॉक्टर के पास जाती हो तो किसलिए? - मैंने पुन: पूँछा

दर्द दूर करने की इच्छा से - अधीरा ने कहा ।

बस! अधीरा बस!! तीसरी इच्छा यही है अर्थात पाप के उदय में जो बाह्य अनिष्ट सामग्री मिलती है, अथवा शरीर में जो कष्ट होते हैं, उन्हें दूर करने की इच्छा ही ' पाप का उदय ' है क्योंकि जब तक वह पीड़ा दूर नहीं होती, तब तक हम व्याकुल होते हुए दु:खी ही होते रहते हैं ।

चंचल तपाक से बोली - 'यदि ऐसा है तो फिर संसार के समस्त प्राणी इन तीन इच्छाओं से पीडित हो गए क्योंकि चाहे मनुष्य हो या तिर्यंच - सभी कष्टों को तो दूर करना ही चाहते हैं ।'

हाँ, हाँ सही कहा तुमने । उक्त तीन प्रकार की इच्छाओं से तो सारा जगत पीडित है पर चौथी इच्छा किसी जीव के किसी काल में ही.....।

अधीरा बात बीच में ही काटकर बोली -" मुझे तो लगता है कि चौथी ' पुण्य के उदय की इच्छा ' तो समस्त जीवों को सदा ही रहती है, क्योंकि हम सब पुण्य का उदय ही तो चाहते हैं ।"

'बहन जी! अनेक कार्यों में प्रवृति की इच्छा ही चौथी इच्छा है । उनमें से कुछ इच्छायें पुण्य का उदय होने पर पूर्ण होती हैं । पुण्य का बंध धर्मानुराग से होता है, परन्तु जीव पापक्रियायों में अधिक प्रवर्तता है, धर्मक्रिया में कम ही लगता है जैसे - हम सभी को देख लो - मंदिर जाना; पूजा करना, स्वाध्याय करना; प्रवचन सुनना आदि पुण्यक्रियायें 24 घंटे में हम मात्र 2-3 घंटे ही करते हैं, शेष समय पापक्रियायों में ही लगाते है । इसलिए यह इच्छा किसी जीव के किसी काल में ही होती है ।' - मैंने कहा ।

'T.V देखना, गाना सुनना, भोजन करना आदि सब इसी चौथी इच्छा में ही आता है?' - जिजीविषा ने पूँछा

'हाँ, हाँ, सही है । पुण्य के उदय से यह सब भोग सामग्री मिल जाती है पर उन्हें एक साथ भोग नहीं सकते अत: कभी कुछ किया करते हैं कभी कुछ' - मैंने कहा ।

"इसका मतलब यह हुआ कि -'इच्छा ही दु:ख का मूल कारण है,' अत: दु:ख दूर करने के लिए इच्छा का त्याग आवश्यक है"-निर्मला ने कहा।

अधीरा बोली बहनजी यह तो हमें आज ही समझ आया कि - **विषय, कषाय, पाप का उदय और पुण्य का उदय - ये भी इच्छा हैं।**

मंदिर में भी इसी विषय पर प्रवचन चल रहे हैं । कुछ समझ नहीं आएगा तो कल इसी समय आपसे फिर पूँछेंगे । ऐसा कहकर आज की गोष्ठी समाप्त हुई ।

अब छोटे - बड़े सभी मेरी चर्चा में भाग लेने लगे हैं । मंदिर भी जाने लगे हैं, प्रवचन भी ध्यान से सुनते हैं । जो समझ में नहीं आता मुझसे शंका करते, यथासंभव मैं भी उनका समाधान करती । सहज में ही यह सब कुछ हो गया । कहा भी है -

दृढ़ इच्छाशक्ति से कार्य किया जाए तो कुछ भी असंभव नहीं ।

भक्ति

सुख कैसे प्राप्त हो?

31 MARCH 1974

'कैसी विचित्र विड़म्बना है? सुख क्या है? उसे कैसे प्राप्त करें? इनकी बात जाने दो, हमें तो अभी तक यह भी पता नहीं था कि हम दु:खी क्यों हैं? हम तो जीवन भर यही मानते रहे कि पैसा न होने पर जीव दु:खी होता है और पैसा होने पर सुखी। इस ओर कभी ध्यान ही नहीं गया कि पैसा होना या न होना दु:ख का कारण नहीं है अपितु पैसा होने या न होने पर जो आकुलता होती है, वह दु:ख का कारण है। **आकुलता से हम दु:खी होते हैं** - इस ओर हमारा ध्यान कभी गया ही नहीं। देव-तिर्यचों में पैसे का व्यवहार ही नहीं, फिर भी वे दु:खी हैं क्योंकि आकुलता उनमें भी होती है। **आकुलता तो दु:खमय ही है। आकुलता का कारण इच्छा है।** यह सब तो समझ में आ गया पर पंडितजी की बातें समझ में नहीं आती। आज वे प्रवचन में कह रहे थे कि 'सुख की इच्छा करना और दु:ख से डरना भ्रम है'- मुझे समझ में नहीं आ रहा कि इसमें भ्रम क्या हुआ? क्योंकि सभी जीव सुख की इच्छा करते हैं और दु:ख से डरते हैं ' - अधीरा ने पूँछा।

मैंने कहा - 'बहनजी! आपने जो वाक्य कहा वह अधूरा है, पूरा वाक्य है - **इन्द्रियजनित सुख की इच्छा करना व दु:ख से डरना यह भ्रम है।** क्योंकि इन्द्रियजनित सुख वास्तव में सुख है ही नहीं, वह दु:ख ही है अत: कहा गया है कि जो इन्द्रिय सुख की इच्छा करता है, वह तो दु:खी होने वाला ही है, फिर दु:ख से डर क्यों? जैसे स्वर्ग की चाह करे और दु:ख से डरे। अरे बाबा! चाह ही दु:ख स्वरूप है। फिर स्वर्ग में भी सुख कहाँ है? वहाँ भी तो दु:ख ही है, तो वहाँ सुख मानना हमारा भ्रम ही हुआ न। बस इतना है कि वहाँ अनुकूल बाह्य सामग्री मिलती है।'

'सही है आंटी! स्वर्ग में अनुकूल बाह्य सामग्री मिलती है, और अनुकूल बाह्य सामग्री मिलने पर तो सभी सुखी अनुभव करते हैं किन्तु जो प्रतिकूल संयोगों और प्रतिकूल बाह्य सामग्री में भी सुखी रह सके, वही सच्चा सुखी है!' कुछ क्षण पहले आई नेहा ने पूँछा।

'नहीं! बेटा नहीं!! तुम्हारा यह कहना सही नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि **बाह्य सामग्री में सुख-दु:ख बिल्कुल भी नहीं है।** वस्तुत: **सुख-दु:ख तो**

मोह के निमित्त से होता है, यही कारण है कि निर्मोही मुनियों को परिषहादि अनेक कारण मिलने पर भी दु:ख नहीं होता तथा मोही हम जीवों को कारण मिलने पर अथवा विना कारण मिले ही अपने संकल्प से ही सुख-दु:ख होता ही रहता है' - मैंने कहा।

'संकल्प से ही सुख-दु:ख कैसे होते है?' नेहा ने पुन: पूँछा।

'मन में ही हम जो सोचते रहते हैं कि ऐसा होगा तो मैं ऐसा करूँगी, नहीं तो ऐसा करूँगी अथवा पुरानी स्मृतियाँ कर-करके भी तो हम दु:खी होते रहते हैं अथवा उसने मेरा बुरा किया, मैं भी उसे बर्बाद कर दूँगी.....आदि मन ही मन में नानाप्रकार के विचार कर हम व्यर्थ ही दु:खी होते रहते हैं। इस सबके तो हम भुक्त भोगी हैं। यही तो संकल्प-विकल्प हैं '- कामना ने कहा।

' इन सब बातों को जाने दीजिए! मूल प्रश्न तो यह है कि आखिर जीव दु:खी क्यों होता रहता है? उसकी सुख की तलाश पूरी क्यों नहीं होती?'- नेहा ने पूँछा।

' बेटा! हम छोटी-छोटी बातों में उलझकर छोटी-छोटी भूलें करते रहते हैं और दु:खी होते रहते हैं।' गंभीरता से जिजीविषा ने कहा।

' वे छोटी-छोटी भूलें क्या हैं? '- प्रेमा ने पूँछा।

' बेटा! हमारी कोई एक भूल तो है नहीं, जो तुम्हे अभी बता दी जाए। उन सबको समझने में तुम्हें समय लगेगा।' जिजीविषा ने कहा।

'बेटा मूल भूल तो हमारी एक ही हैं। उस मूल भूल के वशीभूत होकर हम अन्य भूलें करते रहते हैं। मूल की भूल निकल जाएगी तो अन्य भूलें भी समय पाकर समाप्त हो जाएँगी। जिन पर हम कल से चर्चा करेंगे'- मैंने कहा।

'आंटी! कल नहीं, कल से हमारे *EXAM* हैं। हम दो सप्ताह बाद आएँगे, - तभी इस पर चर्चा करना' - नेहा ने कहा।

मैंने कहा - 'उसके बाद तो मैं भी एक माह को बाहर हूँ, शिविर में जा रही हूँ। एक काम करते हैं दो माह बाद फिर यही मिलेंगे तब उन भूलों की चर्चा करेंगे। तब तक तुम सब भी विचार करना, अध्ययन करना कि हम जीवन में कौन सी छोटी-छोटी भूलें करते हैं; जिससे हमारी सुख की तलाश पूरी नहीं होती!'

इसके पश्चात् सब अपने-अपने घर चले गए और मैं सोचने लगी- बालक हो या वृद्ध, स्त्री हो या पुरुष, मनुष्य हो या तिर्यंच, नारकी हो या देव- सभी तो सुख की

तलाश में हैं । प्रत्येक जीव की प्रत्येक क्रिया का उद्देश्य सुख पाना ही तो है । हमारी दैनिक क्रिया को ही लो - सुबह से शाम तक हम जो भी क्रिया करते हैं; सुख प्राप्ति के लिए ही करते हैं । हम खाते हैं तो सुखी होने के लिए और निकालते भी हैं तो सुखी होने के लिए ही, फिर भी हमें सुख नहीं मिलता; क्योंकि हम सभी एक छोटी सी भूल करते हैं और सुख से कोसों दूर हो जाते हैं । मैं भी हिरण के समान ही संसार रूपी रेगिस्तान में सुखरूपी पानी की तलाश करती रही । कैसे मिलता सुख? यही छोटी सी भूल यह सभी कर रहे हैं । भूलों को जाने बिना, पहचाने बिना भूल दूर होगी कैसे? भूल दूर हुए बिना सुख की तलाश पूरी होगी कैसे? भूल दूर करने के लिए भूल का अहसास आवश्यक है? इन्हें भूल का अहसास कैसे कराऊँ? जो गल्ती कल तक मैं कर रही थी, वही गल्ती ये आज कर रहीं है। कल तक मुझे सुख की तलाश थी, आज मेरे साथी सुख की तलाश में हैं।

विगत चार सालों में अध्ययन करने से मैं समझ गईं, जान गई, पहचान गई कि - मुझे ज्ञान प्राप्त करना है । ज्ञान क्या प्राप्त करना है, मैं तो स्वयं ज्ञान स्वरूप हूँ । यदि हम अपने ही सच्चे स्वरूप को पहचान लें, अपने को ही खोज लें तो हमें सुख कहीं अन्यत्र नहीं ढूँढना पड़ेगा । सुख पाने के लिए सुख के पीछे नहीं, अपने पीछे ही दौड़ना होगा । परमात्मा खोजने के लिए भी अपने में खोना होगा, परमात्मा बनने के लिए भी अपने में ही खोना होगा । जो अपने में खोता है, वह स्वयं परमात्मा बन जाता है । परमात्मा अन्यत्र नहीं, देहमंदिर में ही विराजमान है; सुख भी अन्यत्र नही, अपने में ही है । जो देहरहित आत्मा में श्रद्धान करता है, देहरहित आत्मा के दर्शन करता है, उसे देहदेवल में विराजमान परमात्मा के दर्शन होते हैं । शुद्धात्मा के दर्शन करनेवाले को परमात्मपद दूर नहीं, सच्चा - सुख दूर नहीं । जिस प्रकार कस्तूरी मृग की नाभि में रहती है, और मृग बाहर सर्वत्र ढूँढता रहता है, वह अपनी ओर देखता ही नहीं उसी प्रकार हम भी कभी अपनी ओर देखते ही नहीं हैं, पर में ही सर्वत्र सुख की तलाश करते रहते हैं ।

सच्चा - सुख कहाँ है? क्या है? कैसे प्राप्त हो?..... आदि सभी सवालों का एक ही जवाब है - **आत्मदर्शन** । इस प्रकार अध्ययन से समाप्त हुई मेरी **तलाश:सुख की** । **भक्ति**

हम जीवन में कौन- कौन सी छोटी-छोटी भूलें करते हैं । यह जानने के लिए पढ़िए लेखिका की आगामी कृति -**" छोटी सी भूल "**

दिव्यध्वनि प्रचार - प्रसार ट्रस्ट परिचय

दिव्य ध्वनि अर्थात प्रत्येक प्राणी को तीर्थंकरों के द्वारा बताया गया तत्त्व अपनी अपनी भाषा में समझ में आए । दिव्यध्वनि प्रचार - प्रसार ट्रस्ट, का भी मूल ध्येय यही है कि - तीर्थंकरों की वाणी को आधुनिक भाषा - शैली में, आधुनिक साधनों से जन - जन तक पहुँचाना और उसे हृदयंगम कराना ।

तीर्थंकरों की वाणी को जन- जन तक पहुँचाना एक ऐसा कार्य है जो मानव जाति को विकासोन्मुख बनाए रख सकता है । हमारी अगली पीढ़ी को हिंसा, पापाचार एवं कुव्यसनों से बचाया जा सकता है । तत्त्वज्ञान - श्रद्धान ही हमारे अनंत सुखी होने की सीढ़ी है ।

जीवों में मानव भव ही ऐसा भव है जिसमें जीवन की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि संभव है, परंतु इसके पड़ाव अनेक हैं ।

हमारा उद्देश्य बालकों में सदाचरण, धार्मिक ज्ञान एवं अहिंसक जीवन शैली का प्रचार-प्रसार और प्रशिक्षण देना है । हमारे प्रकाशन ने आधुनिक शिक्षा प्राणाली को अपनाते हुऐ जैन नर्सरी, जैन के जी,भाग १; भाग २; भाग ३, चलो पाठशाला, चलो सिनेमा इत्यादि जैन दर्शन की ए टू जेड़ बेसिक जानकारी देने वाला आठ पुस्तकों का पाठ्यक्रम तैयार किया है जो समस्त भारत में बहुत लोकप्रिय व प्रभावी रहा है । पिछले दो वर्षों में इनके दो संस्करण छप चुके है । अब तीन नई पुस्तकें भी सम्मिलित की जा रही हैं ।

देश-विदेश से इस पाठ्यक्रम के गुजराती एवं अग्रेंजी संस्करणों की बेहद माँग की जा रही है । इस योजना पर इस वर्ष लगभग रू १० लाख व्यय आवेगा । विशुद्ध जिन-वाणी के प्रचार-प्रसार में आपकी रुचि एवं तन - मन - धन से सहयोग हमें हमेशा ही मिला है, मिलता रहेगा - ऐसी हमें आशा है ।

" दिव्यध्वनि प्रचार - प्रसार ट्रस्ट " ने बालकों में जैन मतानुसार सात्विक जीवन हेतु संस्कार रोपड़ का एक कार्यकम तैयार किया है । वास्तव में संस्कार तो बालक माँ अथवा अपने घर से ही पाता है । जो कालान्तर में उसकी मूल वृत्ति का निर्माण करती है । इसलिऐ संस्कारित करने का समय तो वास्तव में ३ वर्ष की आयु से प्रारंभ होकर १८ से २० वर्ष तक की आयु तक ही रहता है । इसके बाद तो जीवन जिस रूप ढल चुका होता

है, उस रूप व्यतीत हो जाता है। इसलिऐ कच्चे घड़े (बाल्यावस्था) को आँच (अच्छे धार्मिक संस्कारों) में पका देने पर फिर उसे चोंहे जितना पानी में रखे (प्रतिकूल खराब अवस्थायें), घड़ा खराब नहीं होता।

सदियों से माँ, दादी, नानी और घर की बुजुर्ग महिलायें परिवार में अच्छे संस्कारों का रोपण एवं धर्म का संरक्षण बहुत यत्नपूर्वक करती आई हैं। सच कहा जावे तो पीड़ियों से संचित यह बहुमूल्य थाति जो हमें ज्यों की त्यों उपलब्ध है उसका श्रेय महिलाओं को ही जाता है। इसीलिए घर में सुख, समृद्धि एवं स्वास्थ्य की वे आधार लक्ष्मी कहलाती हैं।

परिवार के इस स्तंभ को वे आधुनिक परिवेश में ओर भी अधिक सुदृढता प्रदान कर सकती हैं।

आज बहिने अपने खाली समय का उपयोग इस जनहितकारी एवं विकासोन्मुख कार्य में लगाकर सन्तुष्टि तो प्राप्त करेगी ही; बस अपने जीवन के नये अयामों को भी अविष्कृत करेगी।

सभी बहिनें समय की इस आवश्यकता को समझें व हमारे ट्रस्ट के साथ जुड़कर आत्मकल्याण के साथ - साथ मानव - कल्याण में अपना भरपूर योगदान दें - ऐसी मंगल भावना है।

आपके बहुमूल्य सुझाव सक्रिय सहयोग एवं प्रचार-प्रसार में भागीदारी ही इस ध्येय को शीघ्र सफल बनावेगा। हमें विश्वास है कि आप विस्तृत जानकारी हेतु निसंकोच हमसे सम्पर्क करेंगे।

प्रकाशन मंत्री

श्री अविनाशकुमार टड़ैया

लेखिका का परिचय

डॉ. शुद्धात्मप्रभा टड़ैया, ललितपुर - झाँसी के प्रसिद्ध एडवोकेट श्री अभिनंदन कुमारजी टड़ैया के सुपुत्र श्री अविनाशकुमार टड़ैया की धर्मपत्नी हैं। आपका जन्म अशोकनगर (मध्य प्रदेश) में ३० जनवरी १९५८ को हुआ। आपने बी.ए. (ऑनर्स) संस्कृत में स्वर्णपदक प्राप्त किया। एम.ए. में लघु शोध में व पी.एच.डी. में शोध -प्रबंध में भी आपने जैनाचार्यों एवं उनकी कृतियों को ही अपनी शोध-खोज का विषय बनाया है।

अध्यात्मिक वातावरण एवं धार्मिक संस्कारों में पलीपुसी डॉ. शुद्धात्मप्रभा निरंतर अध्ययनशील रही हैं। सम्प्रति वह अपने परिवार के साथ मुंबई में रहती हैं। जहाँ आपके पति का हीरे-जवाहरात एवं डायमंड ज्वैलरी का व्यवसाय है। मुंबई में आप अवैतनिक रूप से आध्यात्मिक कक्षाओं एवं सामाजिक शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों व धार्मिक कार्यक्रमों का संचालन करती ही हैं। जैन जागृति एवं धर्म के प्रचार-प्रसार में आपका सराहनीय योगदान हमेशा रहता है। विगत तीन वर्षों से वे बालकक्षाओं का भी सफल संचालन कर रही हैं।

धार्मिक एवं साहित्यिक अभिरुचि आपकी पैतृक संपदा है। अत: गृहस्थी के जंजाल एवं सामाजिक गतिविधियों से भी कुछ न कुछ समय निकालकर अध्ययन-मनन एवं लेखन से नवीन सृजन में व्यस्त रहती हैं। जैन पुराण के आधार पर लिखी गई **राम कहानी** एवं युवा वर्ग में धार्मिक संस्कार देने की दृष्टि से पत्र शैली में लिखी **विचार के पत्र विकार के नाम** और पद्यात्मक संवादों में लिखी **मुक्ति की युक्ति** एवं जैन दर्शन के सिद्धान्तों को संक्षेप में प्रस्तुत करने वाली **जैनदर्शनसार** कृति इसी अभिरुचि का परिणाम है। बाल मनोविज्ञान व बाल मनोभावों को समझते हुए उनके सरल मन को धार्मिक ज्ञान देने के लिए आधुनिक शैली में लिखी गई जैन **नर्सरी, जैन के. जी. भाग १,२ और ३** बालकों को लुभाने में अत्यंत सफल रही हैं।

लेखिका की अन्य कृतियाँ

१) जैन नर्सरी (हिंदी, गुजराती, मराठी और अंग्रेजी)
२) जैन के. जी. भाग - १(हिंदी, गु., म. और अंग्रेजी)
३) जैन के. जी. भाग - २ (हिंदी, गु., म. और अंग्रेजी)
४) जैन के. जी. भाग - ३(हिंदी, गु.,म. और अंग्रेजी)
५) आ. कुन्दकुन्द और उनके टीकाकार- एक सामालोचनात्मक अध्ययन(शोध प्रबंध)
६) आ. अमृतचंद और उनका पुरुषार्थसिद्धयुपाय (लघु शोधनिबंध)
७) चलो पाठशाला: चलो सिनेमा भाग-१
८) विचार के पत्र विकार के नाम
९) संस्कार का चमत्कार
१०) सत्ता का सुख
११) मुक्ति की युक्ति
१२) प्रमाण ज्ञान
१३) राम कहानी
१४) जैनदर्शनसार